ISSN 2277-923X
UGC List No. 78-42973

कोसल

KOSALA

(Peer Reviewed, Refereed & International)
Journal
of
The Indian Research Society of Avadh, Lucknow

Prof. Satya Deva Mishra Felicitation Volume

प्रो॰ सत्यदेव मिश्र अभिनन्दन विशेषाङ्क

Volume, XLI
October. 2021

23.	मनुस्मृतौ कराधानव्यवस्था	डॉ0 सत्यकेतुः, लखनऊ 119
24.	नीति तत्त्व और श्रीमद्भगवद्गीता	डॉ. ऊषा मिश्रा, लखनऊ 123
25.	वैदिक वाङ्मये देवताज्ञानम्	डॉ. अंशुमान् शुक्लः, हरदोई 129
26.	वक्रोक्ति-औचित्यसिद्धान्तयोः विवेचनम्	प्रो. एम्. चन्द्रशेखरः, लखनऊ 132
27.	सूर्योपासना की वैदिक परम्पराएँ	डॉ. हेरम्ब पाण्डेय, मीरजापुर 136
28.	धर्मसूत्रों में विवेचित प्रादेशिक आचार	डॉ. ऋतेश त्रिपाठी, प्रयागराज 141
29.	वेदों में जल तत्त्व का माहात्म्य	सविता शर्मा, लखनऊ 145
30.	नचिकेता के आत्मज्ञान की प्राप्ति में कठिनाइयाँ	डॉ. सुखवीर यादव, लखनऊ 150
31.	षोडश संस्कार-एक अध्ययन	डा. अञ्जना सिन्हा, लखनऊ 153
32.	भारतीय जीवनदर्शन और पर्यावरण संरक्षण	डॉ. नवलता, कानपुर 160
33.	Impact of Urbanization on Fringe Villages: A study of Lucknow	Dr. Jaya Pandey, Lucknow 164
34.	आधुनिक महाकाव्य 'रक्षत गङ्गाम्' के आलोक में माँ गङ्गा	डॉ. लज्जा पन्त, नैनीताल 168
35.	नाट्यशास्त्रीय शब्दार्थ सम्बन्ध वैशिष्ट्य	डॉ. संजय कुमार, सागर 171
36.	रामसंस्कृति के मूल-तत्त्व	डॉ. सोमप्रकाश पाण्डेय, प्रतापगढ़ 176
37.	संस्कृतसाहित्ये महाकाव्यानां विकासः	अनुश्री अवस्थी, लखनऊ 180
38.	संस्कारमुखेन सदाचारप्रवर्तनम्	प्रो. लोकमान्यमिश्रः, लखनऊ 184
39.	प्राचीन भारत में देवी अम्बिका: हिन्दू साहित्य में संक्षिप्त रेखांकन	डॉ. सुमन लता सिंह, लखनऊ 190
40.	शिवस्तोत्रावली में भक्ति	डॉ. सुमनचन्द्रपन्त 'सुमन्त', जम्मू 193
41.	वेदान्त में वर्णित निर्विकल्पक समाधि	हरगोविन्द, प्रयागराज 200
42.	वेदेषु राष्ट्रचिन्तनम्	सुमेरीलाल, लखनऊ 202
43.	संस्कृतज्ञानेनैव लोककल्याणसिद्धिः	डॉ. नीलम, लखनऊ 206
44.	महाभारत में अहिंसा धर्म	डॉ. योगेन्द्र कुमार सिंह, लखनऊ 208
45.	डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री के काव्य-ग्रन्थों में हास्य-व्यङ्ग्याभिव्यक्ति	अमृता यादव, लखनऊ 211
46.	संस्कृत क्षेत्र में प्रो0 आजाद मिश्र का अवदान	मधुबाला, लखनऊ 216
47.	सद्धर्मपुण्डरीक में वर्णित बौद्ध संस्कार	डॉ. नीलम यादव, वाराणसी 220
48.	यज्ञ और आयु का सम्बन्ध– वैदिक संहिताओं के आधार पर	डॉ. शशि तिवारी, दिल्ली 223
49.	महाभारत का सामाजिक चित्रण	डॉ. रिपुदमन सिंह, लखनऊ 228
50.	प्रो. मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रप्रणीतेक्षुगन्धाकथासङ्ग्रहस्य सांस्कृतिकमनुशीलनम्	सौम्या, लखनऊ 230

नाट्यशास्त्रीय शब्दार्थ सम्बन्ध वैशिष्ट्य

- डॉ. सञ्जय कुमार*

वैदिक संहिताओं के विशेष धर्मों पर आधारित नाट्यशास्त्र को भारतीय ज्ञान परम्परा का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। इसमें केवल नाट्यनियमों का ही वर्णन नहीं किया गया है अपितु सम्पूर्ण सांस्कृतिक विषयों के साथ विविध शास्त्रीय विषयों को भी नाट्य के क्षेत्र में रेखांकित किया गया है। यह नाट्यशास्त्र छत्तीस अध्यायों में विभक्त है। आचार्य अभिनवगुप्त ने इस छत्तीस अध्यायों का सम्बन्ध प्रत्यभिज्ञादर्शन के छत्तीस तत्त्वों से जोड़ा है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन सम्मत यह जगत् छत्तीस तत्त्वात्मक है और उसको प्रकाशित करने वाले शिव हैं। शिव को इस सृष्टि का आदि कारण माना जाता है और यह सम्पूर्ण सृष्टि शिवमय ही हैं।[१] नाट्यशास्त्र की महत्ता के विषय में स्वयं ही भरतमुनि ने कहा है-

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।[२]

अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान नहीं, ऐसा कोई शिल्प नहीं है, ऐसी कोई विद्या नहीं है, ऐसी कोई कला नहीं है, ऐसा कोई योग नहीं है और ऐसा कोई कर्म नहीं है जो इस नाट्य में नहीं दिखाई देता है; यानि कहने का भाव यह है कि आध्यात्मिक और सांसारिक सभी विषयों का यहाँ वर्णन किया गया है। यहाँ ज्ञान से अभिप्राय आत्मज्ञान से है और शिल्प, विद्या, कला आदि से अभिप्राय सांसारिक विषयों के ज्ञान से है, जिसमें शब्दार्थ सम्बन्ध भी समाहित हैं। यद्यपि शब्दार्थ सम्बन्ध शब्द ज्ञान से ही है। सभी शब्द अर्थमय ही होते हैं, लेकिन इस विषय का तात्त्विक विश्लेषण महाभाष्यकार पतंजलि के **'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे'**[३] से प्रारम्भ होता है। यह विषय तब उपस्थित होता जब शब्द के नित्यत्त्व के विषय में विचार किया जाता है। यह शब्द के साधुत्त्व और असाधुत्व के निर्णय के समय उपस्थित होता है और शब्दार्थ सम्बन्ध को नित्य माना गया है। शब्द चिन्तन के सम्बन्ध में आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श में लिखा है-

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिश्संसारं न दीप्यते।।[४]

अर्थात् यदि शब्द रूप ज्योति समस्त संसार में प्रदीप्त न हो तो यह सम्पूर्ण त्रिभुवन अज्ञान के सघन अंधकार में लीन हो जाये। इस तरह शब्द ही ज्योति, प्रकाश है जिससे समस्त संसार प्रकाशित होता है। संसार केवल सूर्य के प्रकाश से ही नहीं प्रकाशित होता है। वह शब्द से भी प्रकाशित होता है क्योंकि शब्द ही सबके मनोभावों, विचारों और चिन्तनों को प्रकाशित करता है। उन्होंने यह भी कहा है-

इह शिष्टानुशिष्टानामशिष्टानामपि सर्वथा।
वाचमेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते।।[५]

अर्थात् इस संसार में शिष्टों द्वारा अनुशासित शब्दों एवं उनसे भिन्न (अननुशासित) शब्दों की सहायता से ही

*सहायक-आचार्य, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) ४७०००३

सर्वथा लोक व्यवहार चलता है। यानि कहने का भाव यह है कि शास्त्रीय भाषा और सामान्य भाषा दोनों से मनुष्य अपना कार्य व्यावहार सम्पादित करता है। आचार्य दण्डी ने लोक व्यावहार के लिए यहाँ संस्कृत शब्दों एवं तदितर शब्दों दोनों के प्रयोग को आवश्यक माना है। इस प्रकार वे संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत, अपभ्रंश या क्षेत्रीय भाषाओं को स्वीकार करते हैं। अतः दोनों प्रकार की शब्द ज्योति से समस्त लोक व्यावहार सम्पादित होता है। यही बात भाषा के सम्बन्ध ा में आचार्य भर्तृहरि भी कहते हैं-

आत्मरूपं यथाज्ञाने ज्ञेयरूपं च दृश्यते।
अर्थरूपं तथा शब्दे स्वरूपं च प्रकाशते।।[६]

अर्थात् जैसे ज्ञातोघटः इस प्रतीति में (ज्ञान में) ज्ञेय रूप (घट) और उसका विशेषण आत्मरूप (ज्ञानरूप) में प्रतीत होता है वही घट शब्द बोध्यो घटः यह ज्ञान की अर्थरूप (घटरूप) और उसका विशेषण स्वरूप (शब्दरूप) भी प्रकाशित होता है। यहाँ भी भर्तृहरि के द्वारा शब्दार्थ सम्बन्ध को ही व्यक्त किया गया है। नाट्यशास्त्र में वाणी के महत्त्व के विषय में कहा गया है-

वाङ्मयानीह शास्त्राणि वाङ्निष्ठानि तथैव च।
तस्माद्वाचः परं नास्ति वाग् हि सर्वस्य कारणम्।।[७]

अर्थात् इस संसार में सभी शास्त्र वाङ्मय यानि वाणी पर ही आधारित हैं। अतः वाणी से बढ़कर विश्व में कुछ भी नहीं है क्योंकि वाणी ही समस्त विश्व का कारण है। आचार्य का मानना है कि सम्पूर्ण सृष्टि-प्रक्रिया इसी वाक् (वाणी) का स्फुरण है। यह समस्त ज्ञान समस्त विद्याओं की अवभासिका है। समस्त विश्व वाणी का ही विर्वत है। यह कारण रूप है और समस्त, विश्व समस्त शास्त्र, समस्त वाङ्मय इनके कार्यरूप में अवभासित होते हैं। वाणी को ही नाट्यशास्त्र में शरीर कहा गया है-

वाचि यत्नस्तु कर्त्तव्यो नाट्यस्येयं तनुः स्मृता।
अङ्गनेपथ्यसत्त्वानि वाक्यार्थं व्यञ्ज्यन्ति हि।।[८]

अर्थात् वाक् यानि वाणी के विषय में प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि वाणी ही नाट्य का शरीर है और अंग, नेपथ्य तथा सत्त्वाभिनय वाक्यार्थ को ही अभिव्यक्त करते हैं। भाव यह है कि जिस शब्द का जिस अर्थ में संकेत होता है वह शब्द उसी अर्थ को कहता है। यहाँ अभिनवगुप्त उदाहरण देकर कहते हैं कि **'तां निभाव्य सरोजाक्षी शृंगारे मग्नमन्तरम्'** यह बात देखने को मिलती है। प्रथम शृंगार शब्द और फिर शृंगार रूप अर्थ दोनों की स्मृति पुनः उससे अर्थ की उपस्थिति होती है, तदन्तर शृंगार रस का बोध होता है। तात्पर्य यह है कि शृंगारादिशब्दों के उपादान में, मध्य में शृंगारादि विषय संकेत स्मृति आवश्यक है किन्तु जहाँ पर विभावादि के द्वारा शृंगारादि रसों की प्रतीति होती है वहाँ शृंगारादि की स्मृति आवश्यक नहीं है।

नाट्यशास्त्र में शब्दार्थ सम्बन्ध के विषय में नाट्य, नियमों, अभिधानों आदि के विषयों में भी कहा गया है-

तस्माद्गम्भीरार्थाः शब्दा ये लोकवेदसंसिद्धाः।
सर्वजनेन ग्राह्यास्ते योज्या नाटके विधिवत्।।[९]

अर्थात् गम्भीरार्थक शब्द लोक और वेद में सम्यक् प्रकार से सिद्ध हैं सब लोग उसे ग्रहण करें और नाटक में उसकी विधिवत् योजना करें। यहाँ आचार्य भरत के द्वारा लोक और वेद में सिद्ध शब्दों के प्रयोग पर बल दिया गया

है। यहाँ सभी प्रकार के शब्दों के महत्त्व को बताया गया है। सभी शब्द या वस्तु का अपना महत्त्व होता है। कोई शब्द या वस्तु अर्थहीन नहीं हुआ करती है-

न च किञ्चिद्गुणहीनं दोषैः परिवर्जितं।
तस्मान्नाट्यप्रकृतौ दोषा नाट्यार्थतो ग्राह्याः।।[१०]

अर्थात् कोई भी वस्तु गुणहीन नहीं होती है और न कोई वस्तु दोषों से वर्जित है। इसलिए नाट्य के ज्ञाता लोग दोष तथा नाट्यार्थ को ठीक प्रकार से समझे। नाट्यशास्त्र में नाट्यानुकूल शब्दों के विषय में कहा गया है-

शब्दानुदारमधुरान् प्रमदाभिधेयान् नाट्याश्रयासु कृतिषु प्रयतेत कर्तुम्।
तैर्भूषिता भुवि विभान्ति हि काव्यबन्धाः पद्माकरा विकसिता इव राजहंसैः।।[११]

अर्थात् हर्ष जनक अर्थ वाले उदार और मधुर शब्दों का नाट्याश्रित रचनाओं में विन्यास के लिए प्रयास करना चाहिए। ऐसे शब्दार्थों से विभूषित बहुत से काव्यबन्ध राजहंसों से सुशोभित कमल सर के समान शोभायमान होते हैं। यहाँ पर यह बताया गया है कि अर्थगुण तो यथा योग सब जगह रहते हैं। उसी को प्रमदाभिधेयान् इत्यादि के द्वारा कहा गया है। प्रमद का अर्थ हर्ष होता है। हर्ष जनकगुण से युक्त अभिधेय अर्थ है जिनका ऐसा अभिधेय अर्थ। इसलिए नाट्यशास्त्र में शब्द और छन्द दोनों के प्रयोग और व्यवहार को समुचित माना गया है-

शब्दच्छन्दोविधानज्ञा नानाशास्त्रविचक्षणाः।
एवं विधास्तु कर्त्तव्याः प्राश्निकाः नाट्यदर्शने।।[१२]

शब्द और छन्दो-विधान जानकर नाना प्रकार के शास्त्रों के विद्वान् दशरूपक के अनुसार प्राश्निक होने चाहिए। इन सबके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र में जो वाचिक अभिनय है वहाँ विशेष रूप से आचार्य भरत ने शब्दार्थ सम्बन्ध को व्यक्त किया है। यहाँ वाचिक अभिनय के विषयों को व्यक्त करते हुए कहा गया है-

नामख्यातनिपातोपसर्गसमासतद्धितैर्युक्तः।
सन्धिवचनविभक्त्युपग्रहनियुक्तो वाचिकाभिनयः।।[१३]

अर्थात् यह वाचिक अभिनय आगम, नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात, समास, तद्धित, सन्धि, वचन, विभक्ति तथा उपग्रह (लिंग ज्ञान) से युक्त होता है। पारंपरिक सिद्धान्त या उपदेश, धर्मग्रन्थ आदि आगम के अन्तर्गत आते हैं। वैदिक युग से ही ज्ञान की दो धाराओं का उल्लेख मिलता है- एक वेद धारा (निगम) और दूसरी पुराण धारा (आगम)। वेदधारा आरम्भ से ही धार्मिक है तथा यज्ञों में विशिष्ट देवता को उद्दिष्ट कर हविर्याज्ञ की विधि को वह महत्त्व देती है। पुराणधारा का लक्ष्य लोकवृत्त का अनुशीलन तथा समीक्षण कर विपुल विवरण देना है। इस तरह आगम को अर्थ प्रधान माना जाता है और निगम शब्द प्रधानता को व्यक्त करता है। नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात को निरुक्त में चार प्रकार का पद माना गया है।[१४] जिन्हें निघण्टु कहा जाता है। कहने का भाव यह है कि निघण्टु में संग्रहीत पद भी नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात चार भागों में विभक्त है। इन शब्द समूहों को निघण्टु कहा जाता है। व्याकरण की भाषा में संक्षेपतः कथन समास कहलाता है। प्रातिपदिकों में जिन प्रत्ययों को जोड़कर किसी विशेष अर्थ को प्रकट किया जाता है उन्हें तद्धित प्रत्यय कहा जाता है। वर्णों के मेल को सन्धि कहते हैं।[१५] वचन संख्या को कहते हैं। एक वस्तु या एक व्यक्ति के लिए एक वचन, दो वचन या दो व्यक्ति को दो वचन तथा अनेक वस्तु एवं अनेक व्यक्ति के लिए अनेक संख्या या बहुवचन का प्रयोग किया जाता है। यही यहाँ वचन है। इसी तरह संख्या के रूप में विभक्ति

को भी स्वीकार किया जाता है क्योंकि जिसके द्वारा संख्या और कारक का बोध हो उसे विभक्ति कहते हैं- संख्याकारक-बोधयित्री विभक्तिः।[१६] उपग्रह को लिंग के ज्ञान अर्थ में स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार नाट्यशास्त्र में वाचिक अभिनय के क्रम में आगम, नाम, आख्यात, उपसर्ग[१७], निपात, समास, तद्धित, सन्धि, वचन, विभक्ति तथा उपग्रह१८ के रूप में शब्द स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। अतः आचार्य भर्तृहरि के द्वारा शब्द के विषय में ठीक ही कहा गया है-

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धपिम ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।
वाग्रूपता चेन्निष्क्रिामेदवबोधस्य शाश्वती। न प्रकाशः प्रकाशिता सा हि प्रत्यवमर्शिनी।। [१९]

अर्थात् लोक में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो बिना शब्द के अनुगम के होता हो। अतः सब ज्ञान शब्द से जुड़े हुए की भांति भासित होते हैं। जैसे अग्नि का प्रकाशकत्त्व स्वरूप है और आत्मा का स्वरूप चैतन्य है, वैसे ही बोध या ज्ञान का वाग् रूप ही नित्य स्वरूप है। अन्त में बहुत महत्त्वपूर्ण बात भर्तृहरि और कहते हैं-

सा सर्वविद्याशिल्पानां कलानां चोपबन्धनी। तद्वशादभिनिष्पन्नं सर्ववस्तु विभाज्यते।।
सैषा संसारिणां संज्ञा बहिरन्तश्च वर्तते। तन्मात्रमनतिक्रान्तं चैतन्यं सर्वजन्तुषु।। [२०]

अर्थात् वही वाणी सब विद्याओं, शिल्पों और कलाओं का बोध कराती है तथा इसीके द्वारा उत्पन्न घट, पट आदि समस्त वस्तुओं का विभाग सिद्ध होता है। यही वाणी प्राणियों की चेतना शक्ति है जो लोक-व्यावहार का साधन है तथा अन्तःकरण के सुख-दुःख का ज्ञान कराती है क्योंकि ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो चेतन हो और वाग् मात्र न हो उसके पास यानि सभी चेतन के पास वाणी है। वाणी ही मनुष्य की भूषण है और यह जो नाट्य है उसका भी स्वरूप और महत्त्व कुछ ऐसा ही है जिसके सम्बन्ध में नाट्यशास्त्र में कहा गया है-

वेदविद्येतिहासानामाख्यानपरिकल्पनम्। विनोदकरणं लोके नाट्यमेतद्भविष्यति।।
श्रुतिस्मृतिसदाचारपरिशेषार्थकल्पनम्। विनोदजननं लोके नाट्यमेतद्भविष्यति।। [२१]

अर्थात् वेद, विद्या एवं इतिहास की कथाओं की परिकल्पना करने वाला यह नाट्य लोक में विनोद को उत्पन्न करने वाला है। श्रुति, स्मृति, सदाचार और परिशिष्ट (शेष) अर्थों की परिकल्पना करने वाला यह नाट्य विनोद उत्पन्न करने वाला है। तात्पर्य यह है कि वेद, विद्या, इतिहास आदि शब्द और श्रुति, स्मृति, सदाचारमय अर्थ दोनों ही मनोविनोद के लिए ही नाट्य में प्रतिपादित किये गये हैं जिसका मूलोद्देश्य आनन्द ही होता है। काव्य में सभी रस आनन्दजनक ही होते हैं यहाँ तक कि करुण भी आनन्दमय ही है। शब्द सदैव अर्थवान् ही होता है। शब्द का साधुत्त्व और असाधुत्त्व दो रूप होते हैं। साधुत्त्व रूप को कामधेनु कहा गया है। इसलिए असाधुत्त्व शब्द को बिना जाने साधुत्त्व शब्द को जानना, पहचानना कठिन है। अतः नाट्यशास्त्र में अर्थ के दोष रहितता की बात की गयी है। इससे पूर्व नाट्यशास्त्र में छत्तीस प्रकार के भूषण के लक्षण दिये गये हैं जिनका उद्देश्य काव्यों में भाषार्थगत रसों के अनुसार प्रयोग करना बतलाया गया है[२२] वे हैं- विभूषण, अक्षर संहति, शोभा, अभिमान, गुण-कीर्तन, प्रोत्साहन, उदाहरण, निरुक्त, गुणानुवाद, अतिशय, सहेतु, सारूप्य, मिथ्याध्यवसाय, सिद्धि, पदोच्चय, अक्रन्द, मनोरथ, आख्यान, याञ्चा, प्रतिषेध, पृच्छा, दृष्टान्त, निर्भासन, संशय, आशी, प्रियोक्ति, कपट, क्षमा, प्राप्ति, पश्चाताप, अर्थानुवृत्ति, उपपत्ति, यूक्ति, कार्य, अनुनीति और परिवेदन। इन भूषण लक्षणों के अतिरिक्त आचार्य भरत ने दोष पर भी विचार किया है। उनकी दृष्टि में कोई भी वस्तु सर्वथा दोषहीन नहीं हो सकती है। मानव शरीर में काणत्त्व, वधिरत्व आदि की तरह काव्य के शब्दार्थ शरीर में गूढार्थ आदि दोष होते

हैं। आचार्य भरत ने यहाँ दश शब्दार्थ काव्य शरीर दोषों का निरूपण किया है-

गूढार्थमर्थान्तरमर्थहीनं भिन्नार्थमेकार्थमभिप्लुतार्थम्।
न्यायादपेतं विषमं विसन्धिशब्दच्युतं वै दशकाव्यदोषाः।।[२३]

अर्थात् गूढार्थ, अर्थान्तर, अर्थहीन, भिन्नार्थ, एकार्थ, अभिलुप्तार्थ, न्यायादपेत, विषम, विसन्धि और शब्दच्युत ये दश काव्यदोष है। यहाँ पर विविध शब्द प्रयोग व्यवहार आदि के सम्बन्ध में उसके अर्थ तत्त्व दोष का निरूपण किया गया है। इसी प्रकार आचार्य भरत ने श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता और कान्ति दश गुणों में भी शब्दार्थ सम्बन्ध स्थापित किये हैं। इनके मत में दोष काव्य का अपकर्षक तथा गुण काव्य का उत्कर्षक होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आचार्य भरत ने व्यापक रूप से शब्दार्थ सम्बन्ध और महत्त्व पर नाट्यशास्त्र में प्रकाश डाला है। काव्य या नाट्य शब्दार्थ सम्बन्ध से ही अपने स्वरूप को प्राप्त करता है। आचार्य भामह, वामन, आनन्दवर्धन और आचार्य मम्मट आदि इसीलिए काव्य में शब्दार्थ सह भाव, शब्दशक्तियों पर विचार किया है। नाट्य का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष अभिनय होता है। वह बिना शब्दार्थ सम्बन्ध के सहयोग से सामाजिक को बोध्य हो ही नहीं सकता है। अतः नाट्यशास्त्र का शब्दार्थ सम्बन्ध विशेष है।

सन्दर्भ-

१. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, १/१
२. नाट्यशास्त्र, १/११७
३. महाभाष्य, १/
४. काव्यादर्श, १/४
५. वही, १/३
६. वाक्यपदीयम्, १/५०
७. नाट्यशास्त्र, १५/३
८. वही, १५/२
९. वही, २७/४६
१०. वही, २७/४६
११. वही, १७/११९
१२. वही, २७/५२
१३. वही, १५/४
१४. निरुक्त, ७/१
१५. अष्टाध्यायी, ८/४/१८, सिद्धान्त कौमुदी, संहितैकपदे नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विपक्षामपेक्षते।।-जैन सुदर्शन लाल, संस्कृत प्रवेशिका, पृ.६४
१६. उपसर्ग- धातु अथवा धातु से बने शब्दों के पूर्व में उपसर्ग को जोड़ा जाता है। उपसर्गों की संख्या २१ है- प्र, परा, अप, सम्, अनु, निस्, निर, दुस्, दुर्, विर्, आङ्, नि, अधि, अप, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि और उप्
१७. लिंग आदि से विशेष सम्बन्धित (पुलिंग, स्त्रीलिंग)
१८. वाक्यपदीयम्, १/१२३-१२४
१९. नाट्यशास्त्र, १/१२५-१२६
२०. वाक्यपदीयम्, ७/१२३-१२४
२१. नाट्यशास्त्र, १/१२२-१२३
२२. नाट्यशास्त्र, १६/८८
२३. नाट्यशास्त्र, १७/८७

******